राष्ट्रभाषामें
आगरकर
किंमत
४
आणे
पुरुषोत्तम शर्मा.
प्रकाशक
मुरलीधर देशपांडे.

श्री. पुरुषोत्तम शर्मा.

प्रकाशक— श्री. मुरलीधर शंकर देशपांडे, राष्ट्रभाषा-कोविद.

प्रकाशन स्थळ- ओगलेवाडी, सं. औंध, जिल्हा सातारा.

मुद्रक— श्रीभुवनेश्वरी प्रेस, ओगलेवाडी. औंध स्टेट, (जि. सातारा).

शुरू की बात

भाओीओं और बहनो, गोपाल गणेश आगरकरजी महाराष्ट्रका अेक महापुरुष हैं। तेज बाल-बच्चोंको आपका परिचय बचपनहीसे होना जरूर है। मराठीमें आपका परिचय मैने दिया, उसकी प्रशंसा समाचारपत्रोंने की, उसे मराठी बालबच्चोंने दिलखुषीसे अपनाया और सरकारी शिक्षा विभागने उसे मंजुरी दी। तो वह घटना अेक उत्थापन थी। राष्ट्र-भाषाकी कोई सेवा हो, हिंदी भाई-बहनेंभी आगरकरजीकी महतीसे परिचय लें और सुधारक बननेकी आकांक्षा बालबच्चोंमें उदित हो, यह है इरादा इस पुस्तकके प्रकाशनमें आज आगरकरजीकी पचासवी रोज। मेरे भाई श्री. मु. शं. देशपाण्डे हेडमास्तरसाहेब ओगलेवाडी की कृपासे आगरकर-जीका यह हिंदी शब्दाचित्र प्रकाशमें आता है। इसीलिये मैं देशपाण्डेजीका आभारी हूँ जैसा श्रीभुवनेश्वरी प्रेसके मैनेजरसाहबका, श्री. पी. डी. विंगकर जिनके कोशीशसे प्रकाशन सुलभ हुआ है।

कऱ्हाड
आगरकर पुण्यतिथी
१९४५

पुरुषोत्तमशर्मा.

गोपाल गणेश आगरकर.

टेंबू

काले पाशानकी गरूडपर बैठे हुई श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी खुब सूरत मूर्ती, किलेके समान उंची उंची चार दिवारोंसे युक्त मंदीर और उसका विशाल सभा मंडप नक्काशीके कामसे खुब सूरत शिखर, महाद्वारका नक्कारखाना, मंजील मंजीलपर मेहराबोंमें बिठाईहुई अनेक देवताओंकी मूर्तीयाँ, ऐसे सजा हुआ मंदीर और इस देवालयकी देखरेख करनेके लिये और मरम्मतके लिये उसको भेंट दी थी। जिसकी लगान सालाना पाउनसो रुपये थी। सातारा जिलेमें कराडके नजदिक कृष्णा नदीके किनारेपर एक बिलकूल टेंबू जैसे छोटेसे देहातमें यह एक वैभवकी बात थी। यह कर्तबगारी बच्चाजीपंत आगरकरकी थी जो नजदिकही एक बडे मकानमें रहते थे जिसके चार दिवारे थी।

बापजादेकी जानकारी.

बच्चाजीपंतके आगरकरके कौन पूर्वज किस कारणसे टेंबू आये और वहाँ स्थिर हुये मालूम नहीं। मगर आगरकर अव्वलमें 'आगरी' गांवके रहनेवाले थे जो रत्नागिरी जिलेमें है। सच पूँछा जाय तो उनका कुलनाम 'दातार' था और गोत्र वासिष्ट। कोई दातार आगरीसे टेंबू आये इसी कारण आगरकर कुल नामसे वे लोगोंमें प्रसिद्ध हुये। लोगोंने उनको अपनानेका और भी एक

कारण था और वह था आगरकरोंका सात्विकपन। उस सात्विक-पनकी पूर्तता बच्चाजीपंतकी कीरत करती थी जो परोपकारमें लगी हुई संपतकी नौबत थी।

बच्चाजीपंतके चिरंजीव विष्णुपंतने अपने पूज्य पिताजीका रुबाब और दबाव भली भाँति निभाया। विष्णुपंतके बडे चिरंजीव लखमनराय चतुर मुनशी थे। जिनके सरस कामसे परंपराकी उच्चता सम्हाल गयी। पर चंचल लछमी हवा हो जाती जब उसे रोकना आसान नहीं और किसीकाभी बस चलता नहीं।

माँ बाप.

लखमनरायने अपने छोटे भाई गणेशजी तथा गणू अप्पाका ब्याह कर दिया था। पर गणेशजी बडे आलसी थे। आलस्यसे लछमी सहकार नही करती। वह निकल चली। इस एक कमीकी गिनती न करके देखा जाय तो गणेशजी और उनकी धर्मपत्नि सरस्वती देवी एक समाधानी दंपती मालूम पडते थे। एक दूसरेको जीसे प्यार करते थे। दोनोंके हृदय थे सरल और प्रभुजीके प्यासे। प्रभूजीकी सेवा या उसका इंतजाम दोनोका एकमात्र व्यवसाय था। पुरानी प्रथा चली जानीसे गणेशजीको कुछ वेद विषयका और साथ साथ संस्कृत भाषाका परिचय था। वही थी उनकी पुंजी जिससे वे कभी प्रवचनकार हुआ करते थे या कभी कीर्तनकार।

सरस्वती देवीकी मुँह-बोली ही कविता रूप लिया करती थी। उनकी रचना प्रभुजीकी लीला या मूरत तथा कीरत गाती थी। न सिर्फ टेंबूमेंसे बल्कि आसपासके देहातोमेंसे भी कितनी

ललनाएं सरस्वती देवीकी रची हुई कविताएं आमोद प्रमोदसे गाती हुई दीख पाती थीं।

देवीके पश्चात्भी उनकी रचना कितनेही दिन सुनी जाती थी। उनकी रचनाका एक सीधा उदाहरण यहाँ नीचे दिया गया है जिसमें कऱ्हाडके श्रीकृष्णा मंदीरमें स्थापित की गयी भगवती श्रीकृष्णाकी मूर्तिका कुछ वर्णन है। देखिये सही।

सुनो सुनो जन,
कृष्णाका पूज्य भगवतीका स्तवन ॥ ध्रृ ॥
सिंहासन पर रत्नजडित है
दसभुज शस्त्रधरी ध्यान ॥ १ ॥
गहिनोंका है अंग अंगमे
किया पैरसे सिरतक मान ॥ २ ॥
उसने राक्षस दलन किया है
त्रिशूलसे जो हाथ धन ॥ ३ ॥
झुंडझुंडसे दरसन करते
हर शुक्रको सभी जन ॥ ४ ॥

पर ईश्वर विषयक गानोंकी रचनामेंही सरस्वती देवीका समाधान न था। ईश्वरकी सेवाके लिये कोईभी चीजका यज्ञ एक मामुली बात सरस्वती देवीको थी। आगे उदाहरण देता हूँ:—श्रीलक्ष्मीनारायणके मंदिरका सभा मंडप कई जगह गिरा हुआ था। उसकी दुरस्ती थी एक मात्र ध्यास गणेशजी और सरस्वती देवीको। मगर कंगालीमें यह मनोरथ हवामें किले बांधने जैसा था। आखिर एक दिन सरस्वती देवी बेचैन हुई अपने हाथोंके सोनेके कंगन उतारकर उन्होंने पतिजीके हाथ दिये और उस सात तोले सोनेकी कीमतसे सभा मंडपकी दुरुस्ती कर ली।

गोपालका बचपन.

सरस्वती देवी सातपूती माँ थी। उनकी हरएक प्रसूती मायकेमें ठीक हुई। ससुरालकी कंगाली पर माताजीका प्रेम की संपत्ति बहुत थी। सरस्वती देवी थी सुकन्या कऱ्हाडके भागवतजीकी। उनके यहाँ सन १८५६ में सरस्वती देवीकी गोदमें जो कुलदीपक आया वही थे श्री गोपाल गणेश आगरकर।

बाल गोपालका परवरिश भागवतजीके यहाँ हुई। हाथ पैरोंसे चलते चलते और मुँहसे तोतले बोलका कूजन करते करते गोपालका जितना बचपन पिताजी गणेशजीकी वत्सलतामें बीता उतनाही गोपालका जीवनक्रम टेंबूमें हुआ। इसके बाद गोपालका जो काल टेंबूमें बीता वह नहीं के बराबर है। सच है कि जब लडका धूलाक्षरकी परिपाठी शुरू करता है, वह अपने माँ बापकी गोद भूल नहीं जा सकता। पर कंगालीमें पूरब होती है पश्चिम, जहाँसे सूरज निकलनेकी जरूरत होती है। टेंबूमें मदरसाका नाम तक नहीं था। तो नजदीक की राह ढुंड ली गयी। रास्ता दिखानेमें और काटनेमें जो साथ देता है वही रिस्तेदार है। अपने बर्तावसे भागवतजीने यह सिद्धांत सिद्ध किया था। इसलिये भागवतजीके यहाँ ठहर कर पाठशाला जानेमें गोपालको कठिनाई न थी। हर वख्त कौतुक करनेवाली नानी, निजका साथी 'दत्तु मामा' और टेंबूसे कऱ्हाडकी दूरी सिर्फ दो मील की। इससे छोटे गोपालको माँ बापकी विरह व्यथा न हुई।

तीन किताबे.

दत्तात्रय भागवत और गोपाल आगरकर साथ साथ पढने

लगे। आपसमें उनका प्रेम और था। बारह बरसकी उम्र तक उन्होंने हावर्ड साहबकी तीन किताबें पूरी की। मगर वे तोते नहीं थे। मदरसेके मुख्याध्यापक श्री नारायण मनोहर रोंधे थे, जो चतुर और मेहनती होकर, खेलते कुदते बच्चोंको शिक्षा पाठसे समरस करनेकी कलाके स्वामी थे। रोंधेजीके विनोद गर्भ सवाल को होशियार गोपाल विनोदहीसे जबाब दिया करता था। गुरूजी-की वाहवा गोपालकी हर दिन कमाई थी। और शिक्षकभी गोपालको प्यार करते थे। इतना ही क्या ? गोपालकी होशियारी मदरसेके बाहर भी चमकने लगी। इन दिनोंमें कऱ्हाडके सब-जज्ज थे श्री नागपूरकर जो सरकारी अफसर होकर भी महामना और शिक्षाप्रेमी थे। हर आदितवार वे एक विषयपर विद्यार्थियोंसे निबंध मंगवाते थे और उनमेंसे उत्तम निकलते थे व सभामें पढाते थे। उत्तेजनके लिये अव्वल दर्जेके निबंधको दो रुपयेका पारितोषिक भी वे दिया करते थे। क्या उस प्रथाका फायदा उठानेके सिवा गोपाल जैसा लडका रहेगा? गोपालने निबंध लिखे और पारितोपक भी अपनाये। एक बार तो गोपालके निबंधमें प्रकट हुआ ओज देखकर सभामें इकट्ठे हुए लोग गोपाल-पर प्रशंसाका वर्षाव करने लगे। यद्यपि उनमें एक विसंवादी आवाज थी। वह थी मामलतदार साहब कृष्णाजी वासूदेव जोशीकी, जो बोले, 'ऐसा अच्छा निबंध इतना छोटा लडका कैसे लिख सकता है ? यह निबंध किसीसे लिख लिया होगा ?' बस यह सुनकर गोपालका मानो मन क्षुब्ध हुआ। असलमें वह था एक विनयशील बालक। पर विनय क्या कायरपन है गोपाल झट खडा हुआ और तुरन्त बोल उठा, 'आप चाहे तो अभीके अभी यहाँ मुझे किसी विषयपर निबंध लिखनेको कहिये। यकीन कहता हूँ इतनाही अच्छा निबंध वह होगा'। बिजलीकी

ऐसी चमक जो आगरकरका एक अंततक विशेष था उसका उदाहरण बचपनमें इसतरह मिलता है।

खेल.

सीर्फ बुद्धिमत्ता ही न थी बल्कि उनमें शारीरिक बल भी था। मदरसेके बाहर जब साथी शोर मचाते वा खेलकूद करते तब गोपालही उनका नेता रहता था। करमणूकका या छुटीका काल मिले तो कृष्णाकोयनाजीके प्रीतिसंगममें तैरता हुआ था या नदीके किनारेपर इमलीके पेडपर चढा हुआ गोपाल दीख पडता था। मानो दबंगपन उसकी सेवामें चाहे जब हाजिर रहता था। सुबहमें पहाड दरीकी पैदल सैरभी गोपालकी एक चाह थी। ऐसी आदतोंसे गोपालका शरीर मजबूद बना हुआ था। धिटाई और जोशनेभी साथ दी थी।

बन्दरका सामना

एक दिन नदी किनारे घूमते घामते हम साथी सोच रहे कि लाल इमलीके पेडपर जावें और मजाक करें। पर इमलीके नीचे वे पहुँचे तो ऊपर दीख पडे पांच छः बंदर आरामसे मजा लूटनेवाले। उनके ऊपर कंकरोंसे हमला चढाया सब बच्चे लोगोंने। किंतु बंदर अटल रहे। किसीकी भी हिम्मत पेडपर चढनेकी नही थी, क्यों की वहाँ बंदर खेलते कूदते थे। आखिर गोपालही आगे बढा। इमलीपर चढकर बंदरोंको भगानेका उसका निश्चय था। गोपाल पेडपर सवार हुआ जब दूसरे बंदर भाग गये पर एक

वहीं ठहरा। नहीं नहीं उस पहलवानने गोपालके साथ कुश्ती शुरू की। गोपालभी सामना करने लगा। बिना घबराहट, गोपालकी चपलता देखकर बंदरने गोपालकी चोटी पकड ली, तो भी गोपाल सामना देता रहा। अंतमें बंदरने हार मान ली। इमली छोडकर वह बंदर दूर गया। इस वक्त अगर गोपाल घबरा जाता तो नीचे गिरकर उसकी मौत हो जाती।

पाठशालाकी छुटी.

बालक गोपालके दिन ऐसे खेलने कूदने और हँसी मजाकमें जाते थे जब एक दिन नसीब पलट गया। हावर्ड साहबकी तीन किताबें पढनेके बाद कन्हाडकी शिक्षा थम गयी। दत्तू मामा आदि हमसाथी पूना चले गये आगली शिक्षा पानेको। पर गोपालकी समस्या कौन पूरी करेगा? बडे मामा रामचंद्र विष्णू याने भाऊसाहब भागवत वकील थे। पर उनके व्यवसायकी शुरू थी, खुदका कुटुंब बडा था और छोटे भाई दत्तात्रयकी शिक्षा पूनामें चलानेकी जिम्मेदारी उन्हीके सिरपर थी। तो गोपालके लिये प्रतिमास पैसा देनेका बोझ उसको कठीन था। तो उनकी सलाहसे गोपाल इतनी छोटी अवस्थामें भी मुन्सिफ कचहरीमें कलर्की करने लगा। कागजके ऊपर कागज काले किया करता था। पर समाधानका साँस छोड नहीं सका। हम साथियोंको आगे आगे दौडते देखकर गोपालके मनमें खलबली मची। उसके मनमें एक रास्ता दीख पडा वह था रत्नागिरी जानेका, जहाँ कोई रावसाहब वामन कृष्णाजी आगरकर डेप्टी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर थे। वे गोपालके दूरके चाचा थे। उनके वहाँ जाऊँ गोपालने यह सोचा। नागपूरकर मुन्सिफ साहबके आगे गोपालने

अपना दिल खुला किया और औरोंकीभी सलाह ली। मुन्सिब साहबकी पसंदगी ७५ रु. की मददसे प्रकट हुई। गोपाल उसे लेकर रत्नागिरी चला गया।

फिर जहाँ के वहाँ .

गोपाल पैदल रत्नागिरीमें वामनराव आगरकरजीके वहाँ पहूँचा। थोडेही दिनमें उसे ज्ञात हुआ कि अनुमान या आशा अनुभवसे कभी मिलती जुलती नही रहती। कऱ्हाडमें किया हुआ अंदाजा रत्नागिरीमें गोपालको मृगजलसा मालुम हुआ। गोपालकी इच्छा थी कि आसानी न हो, लेकिन कुछ कठिनाईसे अपनी शिक्षा चलेगी किंतु कडे बोल और कंगालोंके मथ्थेपर सदाके लिखी हुई लाचारी और कष्ट सहना गोपालके नसीब हुआ। गोपालका समाधान था कि शिक्षा चल रही है। इसलिये अवमानकी गिनती न की। नसीब आई हुई शागिर्दी कर दी। घर घर अनाजकी भीख माँग ली। और दो दर्जेका अभ्यास पूरा कर दिया।

खैर। नतीजा यह हुआ कि गोपालकी सहनशीलता घट गयी। वह कऱ्हाड वापिस लौटा। म्युनिसिपैलिटीके दवाखानेमें कंपाउंडर बन चुका। आया दिन चला जाता पर गोपालके मनमें अंधेरा भरा हुआ था। स्वास्थ्यका पता न था। बडे लोगोंकी यही तरह होती है। वे परिस्थितीके दास नही बनते। वे मन माने मौकेकी राह देखते देखते जीवनका सामना करते हैं। गोपालकी कंपौंडरी भी एक परिस्थितीसे सामना था। उसीमें एक दिन प्रेतकी चिरफाड देखकर गोपालने नौकरी ठुकरा दी। अब हालत

यह हुई कि धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका। पर यह निराशा थोडीही देर ठहरी।

फिर पाठशालाकी शिक्षा.

कुछ दिन बीतनेके बाद सदाशीवराव आगरकरकी नियुक्ती वऱ्हाड प्रांतके अकोलामें हुई। गोपालके मँझले मामा आप थे और वे लोकल फंड ओवरसीअर थे। उनकी धर्मपत्नी अकोला जानेवाली थीं। गोपालने उस मौकेका लाभ उठाया। मामी खुश कि उन्हें घरकाही सह प्रवासी मिल गया। अकोला जाकर गोपालने वहाँके इस्कूलमें १८७२ के जूनमें प्रवेश किया। उसकी शिक्षा शुरू हुई, पर उसका नसीब यहाँ भी उसका दुष्मन निकला। गोपालकी मामी अपने माके पास जो उस समय शय्या-पर अपने आयुष्यके दिन गिन रही थी, मायके घर चली गयी और कब लोटेंगी, कौन कह सकता था। कामके मारे सदाशिव-रावको हर दिन घूमना आवश्यक था। तो गोपालके पेटकी समस्या कैसी पूरी होगी ? मामा साहबकी सलाह थी कि गोपाल कऱ्हाड वापिस जाय।

कऱ्हाड। कऱ्हाडके नाम सुनतेही गोपाल भगीरथने की हुई श्री गंगाजीकी आराधना समझ चुकता था। तब गोपालने और एक रास्ता निकाला। अकोला इस्कूलमें एक शिक्षक थे श्री विष्णु मोरेश्वर महाजनी। उनकी शिफारिश लेकर गोपाल पूना सिधारा। उसने कोशिश की पर फल नही के बराबर था। तो गोपाल अकोला वापिस आया।

प्रवेश परीक्षा.

वहाँकी कठिनाई श्री महाजनीने आसान बना दी। असलमें गोपालकी प्रवृत्ति जरासी उच्छृंखल और बडे बूढोंका सम्मान रखनेकी न थी। यही कारण था सदाशीवरायकी नाखुशीका। तथापि श्री महाजनी अध्यापक मध्यस्थ हुए और सदाशीवराय मामाकी सम्मति उन्होंने ली। गोपालको भी समझाया कि, 'विनयसे चलो। जब महाराज रसोई पकानेको नहीं मिलता तब मामा खुद वह काम करते हैं, तुमभी करो'। गोपालने इन शर्ते मान ली। गाडी शुरू हुई। तीन बरस सीधा प्रवास हुआ और १८७५ में अच्छी तरहसे गोपालने बंबई विश्वविद्यालयकी प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की।

कालेजमें प्रवेश.

परंतु यहीं नहीं थी शिक्षाकी इतिश्री। गोपालका निश्चय था एम्. ए. होनेका। वह पहिलेसे कितनेही दिनोंका निश्चय था। बात ऐसी हुई। अकोला हैस्कूलमें एक दिन किसी कारणसे गोपाल अपने दर्जेमें ठीक समयपर नहीं पहुँचा। तो महाजनी साहब बोले 'जब तुम वक्तशीर मदरसे नहीं आते तुम्हारे हाथसे होनेका क्या है? तुम कुछभी नही कर सकोगे'। महाजनी साहबके इस तानेसे गोपालका अभिमान झट बोला– 'क्या? आपके तरह मैं एम्. ए. तक नहीं जाऊं तो मैं आगरकर नहीं'। अपेक्षा थी कि गोपालके रिश्तेदारोंकी कंगालीमें किसीने किसी

तरहसे पढा लिखा लडका अब नौकरी करे और पैसा कमाये। पर उस कल्पनाको जरा भी छूते हुए गोपालराय— हां हां, उसे अभि गोपालराय कहना चाहिये— कालेजमें प्रवेश करनेकी तैयारी कर चुका। मनका उत्साह जब उछल पडता है तब नसीबको ठौर कहा का। महाजनी आदि गुरूजनोंने गोपालरायका उत्साह देखा तब उन्होंने आपसमें ६० रुपयोंकी भेंट जमाकर अपने शिष्यको दे दी। गुरू जनोंका यह आशीर्वाद समझकर गोपालरायने पूना डेक्कन कॉलेजमें अपना नाम लिखवा दिया।

एकही कुडता.

कॉलेजमें तो शरीक हुआ, पर अपने पास पूँजी बहूत कम है यह गोपालराय जानते थे। इसलिये गोपालरायने अकोलाके समाचार पत्र 'वऱ्हाड समाचार' से इकरार कर आये थे कि वे उसमें लिखे और संपादक उन्हे कुछ तनखाह नही मेहेनताना दे। छः महिनेके बाद उस इकरारकी समाप्ति हुई। गोपालरायके होश उड गये। तो एक दिन उनके हाथ एक विज्ञापन आया। वह था पूनेकी 'वक्तृत्वोत्तेजक' सभाका। गोपालरायने उसका लाभ उठानेकी कोशीश की और पहले दर्जेका वक्तृत्व करके चालीस रुपये पारितोषक अपनाया। कइ दिनोंके बाद डेक्कन कॉलेजका सम्मेलन–समारोह होनेका था। 'एकत्र कुटुंब पद्धतीसे लाभ और हानी' इस विषयपर सम्मेलनसे निबंध मंगवाये गये। यहाँ भी गोपालरायका निबंध सबसे पहला निकला और पचास रूपयका इनाम गोपालरायके हाथ आया। इस इधर उधर की प्राप्तीके सिवा तनिक छात्रवृत्तिभी गोपावरायको मिलने लगी। गोपालरायके पहले डेक्कन कॉलेजमें पढनेवाले उनके मामा दत्तात्रय विष्णु भागवतजीभी थोडीसी मदद उनको दिया करते।

तथापि एक महिना बीता, दूसरेकी क्या तरतूद। इस सत्रका शुल्क दिया गया पर आगले सत्रका क्या किया जाय। सदाके लिये गोपालराय इसी चिंतामें रहते थे। मगर गोपालरायने भीक नही माँगी। सच्चा मानी किसीके सामने हाथ नहीं फैलाता और लाचारभी नहीं होता। गोपालरायके पास पहननेके लिये सीर्फ एकही कुडता था। दूसरा बनानेको पैसा नही था। तो एकही कुडतेपर गोपालरायने कई दिन काटे। रातमें वही कुडता धोकर सुबह उसे पहननेका रिवाज गोपालरायने रखा। पहले बरसकी अंतिम परीक्षाकी फीस देनेके लिये एकभी रुपिया उनके पास न था। आगरकर करने लगे एक नाटककी रचना जिससे पैसा कमानेका उनका मनोदय था। आगरकरने यह निश्चय पुरा करनेकी कोशीश की। वे रात बेरात नाटक लिख रहे। कौन जाने, कहाँसे प्राध्यापक केरूनाना छत्रेजी, जो मूर्तिमंत परोपकार थे, गोपालरायका समाचार समझ चुके। उन्होंनें आगरकरकी फीस दी और उनके हाथमे वह नाटक ले लिया। इस तरह गोपालरायकी कॉलेजकी शिक्षाका चल रही थी। और गोपालराय १७७८ में बी. ए. हुए।

ब्याह.

बी. ए. की उपाधि मिलनेही के पूर्व गोपालरायका ब्याह हो चुका था। उस कालका रिष्म रिवाज देखा जाय तो गोपालरायके ब्याहको देर हुई थी। पर बेशक यह कंगालीका असर था। कोई लडकीका बाप शुरू शुरूमें गोपालरायका नाम तक भी सुननेको तैयार न था। पर खूदकी हिंमतसे जब गोपालराय बी. ए. तक आ पहुँचे, पहली हालत सब पलट गयी। गोपालरायके पिताजी गणुअप्पा उर्फ गणेशजी हमेशा उंब्रज (सातारा) जा या

करते थे। वहाँ के श्री विनायकराव केलकर उनके मामा थे। केलकरजीके उपाध्याय थे रामभटजी फडके जो वहीं रह करते थे। राम भटजीके सुपूत मोरभटजी। उन दोनोंका परिचय गणेशजीसे हुआ। अिससे मोरभटजीने गणेशजीको बिनती की, 'मेरी लडकीको अपनी बहू बना लीजिये'। गणेशजीको वह अेक अचरजकी बात थी। पर मोरभटजी बोले, 'कुछ सोचनेकी या चिन्ताकी बात नहीं है। सीर्फ आपके लडकेको देखकर मैं खूष हूँ और मेरी लडकी ब्याहमें देना चाहता हूँ'। तो गणेशजीके संमतीको क्या देर ? फौरन कुमारी अंबा फडके सौभाग्य लक्ष्मी यशोदादेवी आगरकर कुछ दिनमें बनी। ब्याहके बाद सीर्फ दो महिनेमें गोपालराय बी. ए. उत्तीर्ण हुअे और एम्. ए. की किताबे पढने लगे।

आगामी तरतूद.

अेम्. अे. के लिये गोपालरायने चुना हुआ विषय था इतिहास और तत्वज्ञान। बी. अे. होनेके बाद डेक्कन कॉलेज ही में अेक 'फेलो शिप' गोपालरायको मिल गयी थी। उससे उनकी चिन्ता कम हुअी थी। मगर दामकी चिन्ता मिटाना और हो सके तो मालदार होना गोपालरायकी शिक्षाका ध्येय और साध्य नही था। गोपालरायने अपने माँको लिखा हुआ एक खत दिखाता है कि उनको मनीषा कैसी थी :—

" अपना लडका बडी बडी परीक्षाएँ उत्तीर्ण पाता है उसे अब बडा तनखाह देनेवाली नौकरी भी मिलेगी और अपनी अबतककी कंगाली मिट जायगी। माँ यही होगा तेरा

मनोराज्य। लेकिन मैं अभीसे कह देता हूँ कि मुझे ज्यादह धनकी जरूरत नहीं। मैं चाहता हूँ कि सीर्फ पेट पालने जितना धन मिलनेसे मैं संतोष मान लूँगा और सभी कालका व्यय लोग सेवामें कर दूँगा"।

कमाया हुआ ज्ञान लोकसेवामें लगानेकी आँच गोपालरायको कितनी थी। गोपालरायके गुरूजी महाजनीसाहब इस बारेमें लिखते हैं—

"विद्यार्थी अवस्थामें कंगालीसे सतत झगडा करके अलौकिक यश पातेही आमरण कंगालीही अपनानेमें गोपालराय अध्यापक वृत्तीके पुराण ऋषिका अनुसरण करते और उस वृत्तीको उज्वल बना रहे थे"।

तिलकसे योग.

कई कारणोंसे अपने आगामी जीवनका यह नक्शा आगरकरजीनें खींचा था। आगरकर भूल नहीं गये थे कि शिक्षा पानेके लिये उन्होंने कितनी कठिनाइयाँ झेलकर और खर्च उठाकर हासील की थी। ज्ञानका सदुपयोग करनेमें गरीबोंकी याद हमेशा रखना आगरकरजीने कर्तव्य मान लिया था। गोपालरायजीने यह भी देखा था कि अज्ञान लोगोंको इसाई बनानेमें पादरी लोग कितनी तकलीफ उठाते थे और कितने थोडे मुशाहिरेपर अपना गुजारा करते थे। तो आगरकरके मनमें आया कि क्या हम हिंदी लोग अपनेही भाई-बहनोंको सज्ञान करनेके और स्वाभिमानसे

अपना व्यवहार करने सिखानेके लिये रोटी चले जितने मुशाहिरे-पर उनकी सेवा नही कर सकते। ऐसे विचारोंका और एक साथी गोपालरायको इस समय मिला, जिसका नाम था बाल गंगाधर तिलक। गोपालराय एम्. ए. की और तिलकजी एल्. एल्. बी की किताबें डेक्कन कॉलेजमें पढा करते थे। उनके विचार एकसे थे और वे झट जिगर दोस्त बन चुके। दोनोंके दिलमें एकही कसक थी कि अपनी मायभूमी परवश है। "अपनी सामाजिक कमी और संसारके साथ ठीक ठीक न चल कर 'पुरानेही को सोना' माननेकी कल्पना अपने राष्ट्रको अवनतीमें ढकेलती है और परवशता सुदृढ बनाती है"। यह थी श्री. आगरकरजीकी राय। श्री. तिलकजीकी राय थी कि, सीर्फ पाश्चात्योंका अनुकरण कर नये विचार प्रवाहमें बह जानेकी अपेक्षा अपने पुराने स्वाभिमानको जगा कर आगे बढानाही ठीक है। किंतु राजकीय परवशता के होते हुए सामाजिक दोषोंकी नामोनिशानी तक मिट जाना असंभव है। संक्षेपमें दोनोंकी रायमें मतभेद था कि— आगरकर मानते थे कि समाजसुधार पहले होना चाहिये। और तिलकजीकी राय थी कि राजकीय परवशता पहले मिट जाय। पर भारतको किसी न किसी तरह प्रगतिपथपर लानेके लिये लोगोंको शिक्षाका प्रचार करनेके बारेमें दोनो सहमत थे।

दैवकी देन.

कमसे कम खरचेमें देशकार्य पोषक शिक्षा देनेवाली पाठशाला खोलनेका इरादा तिलक आगरकरजीने किया। उन्होंनें एक खतसे यह विचार न्यायमूर्ति माधव गोविंद रानडेजीको मालुम कर दिया। हरएक ढंगसे देशकी उन्नति कैसी हो सके,

यह थी हमेशा रानडेजीकी चिंतन धारा। आप सबसे पहले आगे बढकर हिंदुस्थानको नया जीवन देनेके लिये स्वयं खूब यत्न किया करते थे। ऐसे भले नेतामे आशशि अपनी योजनाको मिले यह स्वाभाविक भावना तिलक आगरकरजीकी थी। रानडेजीकी भी चाह थी कि चमकदार और बुद्धिमान युवक देशसेवा करे। तिलक आगरकरजीने मुक्रर की हुई देशसेबाकी नई दिशा देखकर रानडेजीने उनको बहूत उत्तेजना दी।

उसी काल सरकारकी नौकरीको उठाकर महाराष्ट्रके नवजीवन निबंधमालाकार विष्णु कृष्ण चिपलूनकर शास्त्री पूनामें आ बैठे थे। एक नई पाठशाला खोलनेकी उनकी मनीषा थी। उस मनीषाका पता तिलक आगरकरजीको लगा। सोये हुए महाराष्ट्रको जगानेका पवित्र काम चिपलूनकरजीकी लेखनी कर रही थी। इस कामसे चिपलूनकरजीको ‘मराठीके शिवाजी’ कहते थे। इसलिये तिलक आगरकरजी उन्हे नितांत सम्मानपात्र मानते थे। इसके सिवा आगरकरका चिपलूनकरसे अल्पसा परिचय भी था, क्यों कि आगरकरजीने एक राजकीय निबंध लिखकर चिपलूनकरजीसे प्रशंसा पायी थी। यह आदर और परिचय तिलक आगरकरजीको शास्त्रीजीके सहकार्यमें खींच लिया। शास्त्रीजीने भी अपनी अनुमती दे दी। अपने भाईको लिखे हुए एक खतसे मालुम होता है कि शास्त्रीजी तिलक आगरकरके सहकार्य कितना बहुमोल मानते थे।

“तिलक आगरकर आदि लोग खूशीसे मेरे नयी पाठशाला खोलनेके साहसमें सहकार्य करनेकी संमति दे चुके हैं। ता. १ जनवरी १८८० का दिन मुक्रर किया है। उस दिन हमारे कार्यका झंडा फहराया जायगा। क्या हमारे ऐसे तोफखानेसे सरकारी हैस्कूल कबतक सामना दे सकेगा”।

एक वर्षके बाद.

ता. १ जानवरी १८८० को 'न्यू इंग्लिश स्कूल' नामसे चिपळूनकर–तिलक–आगरकर प्रभृति लोगोंकी नयी पाठशाला शुरू हुई। पहलेही दिन पाठशालाकी छात्र संख्या डेढसौ थी। तीन महिनेमें वह संख्या पाँचसौ तक बढ गयी। मगर आगरकरजी शुरूमें पाठशालाकी सेवामें रुजू नहीं हो सके। क्यों कि इस साल उनकी एम्. ए. नहीं हुई। और एक बरस आगरकरजीने अभ्यास किया और एम्. ए. की उपाधि लेकर न्यू इंग्लिश स्कूलकी सेवा करनेके लिये आये।

केसरीका संचार.

पाठशालाका नाम सब ओर मशहूर हुआ। असलमें चिपळूनकर–तिलक–आगरकरजीका विचार आम जनताको जगानेका था। लोगोंकी परवशता, दैन्य, दुःख आदि बातोंकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करनेकी जरूरत थी। सीर्फ पाठशाला चलानेसे यह सिद्ध नहीं होगा। लोगोंको जगानेका खास उपाय है 'अखबार'। इसलिये चिपळुणकर–तिलक–आगरकरजीने अखबार निकालनेका काम हाथमें लिया। एक पुराना छापा खरीदा और रातहीमें अपनी जगहमें उसकी स्थापना की गयी। पूनाके बुधवार पेठमें मोरोबादादा फरनवीसके मकानमें 'आर्यभूषण' नामसे छापखाना शुरू हुआ। वहाँ ता. २ जानवरी १८८१ को 'मराठा' नामका एम अंग्रेजी और ४ जानवरी १८८१ को 'केसरी' नामका मराठी अखबार प्रसिद्ध होने लगा। मराठाके

संपादक थे तिलक और केसरीके आगरकर। पाठशालाका काम संभाल कर न्यू इंग्लिश स्कूलके साथी शिक्षक संचालक शुरू शुरूमें दोनों अखबारोंमें लिखा करते थे। फलत: जन साधारणमें नवयुगका डंका केसरीने बजाया राजकीय तथा सामाजिक और वैयक्तिक किसी तरहके अन्यायपर हमला चढाना केसरीने शुरू किया। केसरीकी आवाज महाराष्ट्रके कोने कोने तक जा पहुँची। विषयोंकी विविधता, अद्ययावतकी खबरें और भाषाकी सुरसता केसरीके प्रधान गुन थे जिनसे केसरी एकही सालमें लोगोंका प्राण हो चुका।

डोंगरीकी हवा.

ठीक। पर अन्याय करनेवालोंपर हमला चढाना आसान नहीं। अन्यायक सामना देनेको खडा होता है। १८८१ के आखिर केसरीपर यह संकट आया। कोल्हापूर पर्व उसे कहते है। कोल्हापूरके छत्रपति राजाराम महाराज १८७९ में परलोक गये। आपने दत्तक चिरंजीव शिवाजी महाराज उस सालके आक्तूबरमें अपनी शिक्षा पूरी करके राजकोटसे कोल्हापूर वापिस आये। उसके पहले ब्रिटिश सरकारने कै. राजाराम महाराज मरनेके बाद ब्रिटिश सरकारने खास नियुक्त किये हुए रायबहादूर बर्वे दरबार-का कारबार चलाते थे। ये रायबहादूर और श्री शिवाजी महा-राजकी मातु:श्री आपसमें मेलजोल कभी नही रखते, तो सहकार-की बात क्या ? हमेशा झगडे होते थे। कोल्हापूर आते ही श्री शिवाजी महाराजके पागल होनेकी घोषणा रायबहादूरने की गयी। पागल ठहरा कर उन्हे कोडेसे मारना पीटना शुरू हुआ। बात बातमें यह संवाद गुंजा रहा। इससे तिलक आगरकरजीने उस

की ओर नजर डाली। १५ जानवरी १८८१ के मराठामें श्री शिवाजी महाराजपर होनेवाले अन्यायका परिस्फोट किया गया। केसरीकी भी गर्जना हुई। तो रायबहादूर बर्वे गुस्सेसे तमातमा हुए। सोचने और धुंडने लगे, पूनाके संपादकके संवाददाता कौन होंगे। शक आया सदाशीव पांडुरंग तथा नाना भिडे, और न्याय खातेमेंसे बलवंतराय जोशी का। रायबहादूर या रेसिडंट साहबकी अपेक्षा उन दोनोंकी सहानुभूति श्रीशिवाजी महाराज और आपकी मातुश्रीसे थी। उनमेंसे जोशीजी थे तिलकजीके स्नेही। न्यू इंग्लिश स्कूलके सुपरिंटेंडंड वामनराव आपटे कोल्हापूरमें शिक्षा पाये थे। घर घरमें दिन दिन भोजनकी भीक माँगकर। इन सब बातोंको मिलाकर रायबहादूर बर्वे यह एक अपने खिलाफ षड्यंत्र समझ गये। उसका बदला लेनेके लिये आखिर रायबहादूरने बंबईके गवर्नर साहबको एक अर्जीसे केसरी मराठाके संपादकोपर अभियोग चलानेका परवाना देनेके विनति की। पहली अर्जी विफल हुई, तो दूसरी की गयी। अंतमें परवाना आया। बंबईके चीफ प्रेसिडेन्सी मॅजिस्ट्रेटकी अदालतमें तिलक आगरकर और उनके साथियोंका अभियोग चलाया गया। पूरे जाँच तपासके बाद १३ जुलाई १८८२ को तिलक आगरकरको चार महिनेकी सादी सजा दी गयी और उनको डोंगरी जेलकी हवा खानेको ले गये।

जेलमें.

इन चार मासमें तिलक आगरकरजीने खुदकी समालोचना की। असलमें अपनी विचारधारा, उसकी परिस्थितीसे प्रति-

योनिता, उसके बारेमें आया हुआ अनुभव और उनका होनेवाला विकास ये तिलक आगरकरजीकी बातचीतकी विषय थे। तथा इन्ही चार महिनोंमें महाकवि शेक्सपियरके हॅम्लेट नाटकका 'विकार विलसित' नामसे मराठीमें अनुवादभी आगरकरजीने किया। कैदखानेके बाहर आनेके बाद आगरकरजीने एक पुस्तिका प्रसिद्ध की 'डोंगरीमें १०१ दिन' जिसमें तिलक आगरकरजीके सजाके दिनका मनोरंजक इतिहास दिया गया है। आगरकरजी लिखते है—

"कोल्हापूरके अभियोगके बारेमें लोगोंका तर्क बिलकुल गलत निकला। लोग मानते थे संपादकको सिर्फ जुर्माना देगा पडेगा पर जज्ज और ज्युरीने उनका तर्क झूट बनाया। लेकिन संपादक किसी भूलमें न थें। अदालतमें फरयाद दाखल होते ही कितने लोगोंका अंदाजा हुआ कि केसरी मराठा की मौत आई लेकिन वह नहीं हुई। शास्त्रीजीकी अकाल मृत्यूसे (१७ मार्च १८८२) बात भी सब कहने लगे कि अब यह नौका डूब गयी। अस्तु। हम समझते हैं कि इतने थोडे समयमे हमें जो दो संकट घेर बैठे थे और जिनमेसे हम विना-मत भेदके पार हुए। यह बात हमारे देशबांधवकी यकीन देगी कि देशसेवासे दंभसे और धन कमानेके लोभसे हम इस यत्नको नहीं करते। इससे कोई कठोर कामकी जिम्मेदारी हमने हाथ ली है और निश्चयसे उसको पूर्ण करनेकी हमने ठान ली है"।

लोकादर और बढा.

जब लोगोंनो वार्ता सुन ली की तिलक आगरकरजीको बंदीखानेकी सजा हुई तब उनका आदर बढ गया। तिलक आगरकरजीका छुटकारा पानेके लिये डेक्कन कॉलेजके प्राध्ययापक वड्सवर्थ और न्यायमूर्ति मंडलिक सरकारमें अपनी इज्जत काममें लानेमें सफल नहीं हुए। अंतमें २६ आक्तूबर १८८२ को अपनी सजा खतम करके तिलक और आगरकर मुक्त हुए। लोग उनको जुलूसमें ले गये। हर जगहपर उनका सम्मान समारोहसे हुआ। बंदीखानेसे छुटे हुए छुटकारा पाऐ हुए देशसेवकोंका सम्मान उस समय एक अपूर्व चीज थी। गेंदकी तरह ये दोनो नेता इस आपत्तीसे न दबकर फिर नयी उमंगसे लोक सेवाका काम रातदूना दिन चौगुना करने लगे। केसरीने अपना अयाल फुला दिया और अन्यायपर हमला चढानेके लिये जोरसे गर्जना की।

पारिसीमा.

क्रमसे केसरीकी ताकद बढती चली और उसकी उन्नति भी हुई। न्यू इंग्लिश स्कूलकी प्रगति भी मनपसंद थी। मॅट्रिक परीक्षाके यशका मान बढा चढा था। जगन्नाथ शंकरशेठ छात्रवृत्ति इस पाठशालाकी मौरूसी हो गयी। इससे आशा फुली और संचालक लोगोंने १८८४ में डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटीकी स्थापना की और १८८५ के दो जानवरीको फर्ग्यूसन कॉलेज शुरू किया। संचालकोंकी लोकसेवा तुरंत चमकने लगी। बस तिलक आगरकर आदिके सहकारकी, संघटनाकी और एक दिलकी फर्ग्यूसन कॉलेजको यश ही यश था।

मतभेद.

न विरोधकी फिक्र न यशकी साध करके, अपनी आँखोंके सामने रखा हुआ ध्येय व्यवहारमें लानेका लगातार प्रयत्न वे करते थे। पर इन संचालकोंको आखिर मतभेदसे लोहा लेना पडा। देशमें स्वातंत्र्य और वैभवकी पूनोकी जगह परवशता और दारिद्र्यकी अमावसका शासन जारी हुआ था। तिलक और आगरकर दोनोभी इस हालतके गहर विचारमें बैठे हुए थे। देशकी हालत यह स्वातंत्र्यके लोपहीसे हुई है। तिलकजीने देखा कि लोगोंकी शक्ति जगाकर राजकीय परवशताका अंत करना यह एकमात्र उपाय है। आगरकरजीके ख्यालमें समाजकी वर्तमान अवस्था बदलकर नये सायन्सके अनुसार नयी सभ्यताका स्वीकार करनाही भारतके उत्कर्षका सबसे पहला कार्य है। मतलब यह है कि एक राजकीय स्वतंत्रताका (Political Revolution) करना चाहता था तो दूसरा सामाजिक क्रांति (Social Revolution)। इसी तरह दोनोंने अलग अलग राह ली। सन १८८७ मे आगरकरनें केसरीसे अपना संबंध तोड दिया और मराठाके साथ केसरीकी जिम्मेवारी तिलकजीने ली। आगले सालमें आगरकरजीने अपने मित्र गोपाक कृष्ण गोखलेजीकी सहायतासे 'सुधारक' नामका एक अखबार निकालकर अपनी रायके अनुसार लोगोंको मार्गदर्शन करना शुरू किया। तिलक आगरकरोंके मतभेदका असर फर्ग्युसन कॉलेजपर भी हुआ। १८९० मे तिलकजीने डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी छोडकर राजनैतिक आन्दोलनमें पूरा चित्त लगा दिया।

बिरोध.

'सुधारक' में अंग्रेजी लेखोंका संपादन गोपालजी और मराठीका आगरकर किया करते थे। जब अन्याय और अनीतिका पत्ता चलता तब सुधारक उसपर जीसे हमला चढाता। समाजपर रूढी का बंधन इतना कडा था कि 'पुरानाही सोना है' माननेवाले लोगोंको ये नये विचार असहनीय हुए। एक दफे धूलिवंदनके दिन आगरकरजीके मुर्देका स्वांग निकालकर लोगोंने स्मशान यात्राका समारोहभी किया। पर आगरकर इसे नही डरते थे। आगरकरजीकी प्रतिज्ञा थी की जबतक अर्थबोधक अक्षर लेखनी लिख सकती है और उसे पढनेवाला एकभी आदमी मिलता है तबतक सुधारक अपना कर्तव्य निष्ठासे करता रहेगा। इस प्रतिज्ञाका कारण पुरानी परंपराके वकील तिलकजिका सामना आगरकरको करना पडा। एक बार आगरकरके खिलाफ बेइज्जतकी फरियाद तिलकजीनें तैयार की थी। लेकिन न्यायमूर्ति रानडे मध्यस्थ हुए और सब मामला खतम हुआ।

सुधारक.

सुधारकमें आगरकरजीकी लेखनकी करामत उत्कटतासे दीख पडती है। कवि कुल गुरू कालिदासजीके कितनेही नाटक है, पर शाकुंतल आपका नाम अजरामरसा कर देता है। सुधारकमें प्रकाशित हुए आगरकरजीके लेख—सामाजिक चिकित्साके क्यों न हो—महाराष्ट्रके सामाजिक इतिहासमें आगरकरजीका नाम ध्रुवसा बना देते है। उनका जीवन रस था 'बुद्धिप्रामाण्यवाद'।

कितनीही मामुली बात हो बुद्धिकी कसोटीपर लगाकर उसका अव्वलपन देखना चाहिये, जो बुद्धि पसंद करे उसे अपनाइये, बेफिक्र होकर कि उसके स्वीकारसे बुरी हालत होगी या कोई त्यागकी जरूरत पडे, जो बुद्धि परीक्षामें न उतरे, वह लोकाचारमें हो, या लोगोंको जीसे प्यार हो, उसे बेशक फेंक देना चाहिये यह थी सारांशमे सुधारकने महाराष्ट्रको दी हुई शिक्षा। सात बरसोंकी अटूट सेवा जो सुधारकसे आगरकरजीने की, उसका ध्रुपद था—

"विश्वासपर निर्भर कल्पनाओंको और आचारोंको विवेककी आगमे सोनेकी तरह विशुद्ध करना सुधारकके अनेक कर्तव्यमेंसे एक कर्तव्य है"।

अर्थात शुचि–अशुचि, गंडा–पानी, देवता–देवियोंकी उत्पत्ति लडके–लडकियोंकी सहशिक्षा, केशवपन, स्त्री पुरुषोंके पेहराव, स्वयंवर, वल्लभोपासना, प्रियाराधन, इत्यादि मामुली विषयोंकी चर्चा आगरकरजीने विस्तारसे सुधारकमें की। पर शिक्षाके संबंधमें सुधारकमें जो लेख आये है, उनमे आगरकरजीकी कुशल शिक्षककी छबी मालूम पडती है। पुरानी भारतीय कलाओंके बारेमें सुधारकने अपना गर्व प्रकट किया है। 'अंग्रेजी राजकी दूसरी बाजू या हमारी घोर कंगाली' 'अंग्रेजी राजमे भरपेट खाना भी नही मिलता' जैसे राजकीय लेख तथा विवेचक आर्थिक लेख भी सुधारककी विशाल दृष्टि सूचित करते है और यकीन देते है कि आगरकरजीने हरएक बातोमें अपना प्रण रख्खा था कि—

'हित ही हित का सच बोलूँ।
जो हो, हाथसे सब कर लूँ'।

उंचा स्थान.

सुधारकके संचालनके साथ साथ न्यू इंग्लिश स्कूल और फर्ग्यूसन कॉलेजकी शिक्षाकी परवरिश भी आगरकरजी जानसे कर रहे थे। सीर्फ किताबोंसे शद्बज्ञान आगरकरजीका काम न था। आगरकरजीका पढानेका इस तरह था कि विद्यार्थी अपने बुद्धीसे किसी विषयको समझ सके। इसीसे वे उतने प्यार थे। आगरकरजीका सम्मान बढाती गयी। शूरूमें आगरकर न्यू इंग्लिश स्कूलके एक शिक्षक थे पर वे उसके सुपरिंटेंडेंट हुए। तथा फर्ग्यूसन कॉलेजके प्राध्यापक आगरकर, संस्कृत कोशकार वामनरावजी आपटे के पश्चात् फर्ग्यूसन कॉलेजके प्राचार्य बने।

अंत.

फर्ग्यूसन कॉलेजके प्राचार्य आगरकरजी तो बन चुके। किंतु पंडित वामनरावजी आपटे की मौत हुई, खुदका भरंवसा भी कितने दिनका? आगरकरजीको यह शक था। तो भी सामनेकी दिन दिन बढनेवाली जिम्मेवारी आगरकरजीने ठीक ठीक सम्हाल ली। कर्तव्य करते समय अगर कोई साथी न हो तो भी खूदही उसे पूरा करना चाहिये। मुस्तैद आदमी उससे मुँह नही मोडते। या दुर्बलताके नामपर उसे टालते भी नहीं। जिसे हो सके उतना बोझ शिरपर लेते है और भगीरथ प्रयत्नसे यशका मार्ग चलते हैं। आगरकरजीने भी वही किया। बी. ए. की पढाईसे बाद आगरकरजीको खाँसी सताती थी जो उनकी अनुवंशिक थी। अनेक औषधीयों, अनेक उपचारों, अनेक प्रतिबंधोंसे भी वह

उनको छोडनेको तैयार न थी। तो थी वामनराव आपटेजीकी जगहपर आगरकर खडे हुए। और उन्होंने देखा कि फर्ग्यूसन कॉलेजकी व्यवस्था निजी इमारतमें हुई। आगरकरजीको यह एक समाधान था। तो भी १८९५ के धूपमें उनकी तबियत बिलकूल खराब हो गयी। 'त्राटिका' नाटकके रचनाकार और अंग्रेजी काव्यके फर्ग्यूसनके प्राध्यापक वासूदेवराव केलकरका भी इस समय स्वर्गवास हुआ। इस वार्ताको सुनतेही आगरकरजीकी प्रकृति एकदम खराब हुई। और सोमवार ता. १७ जून १८९५ को सुबह आगरकरजीकी आत्मा अज्ञातमें विलीन हुई।

आगरकरजीके बाद.

गोपाल गणेश आगरकरजीकी मौतकी वार्ता विव्हल हृदयसे महाराष्ट्रने सुनी। आगरकरजीके अनुयायी और रिश्तेदार शोकमग्न हुए और उनके विद्यार्थी दुःखित हुए। हरिभक्त परायण लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर 'मुमुक्षु' का संपादक जैसे सनातनी शिष्योंकी अश्रुधारा अखंड बहने लगी। बाल गंगाधर तिलकजी जैसे धीरजके हिमालयसे आँसूओंकी गंगा—यमुना निकल पडी।

आगरकरजीकी श्रेष्ठता.

आगरकरजीकी योग्यता असामान्य थी। नामदार गोपाल कृष्ण गोखले लिखते हैं :—

'एक महापुरूषने आखीरकी विश्रांति ली। उनकी मौतसे न केवल पूना या महाराष्ट्रकी, बल्कि सब देशकी हानी हुई। जनमसेही बडप्पन मिलना

महाभाग्यकी बात है। पर बडप्पन जब खुदकी कमाई होती है उसका मोल ज्यादह है। विद्वान पंडित, सच्चा देशसेवक, शीलवंत महापुरुष आगरकरजी थे। उनके माफक महाभागोंका योग देशमें कितनेही संवत्सरोंसे होता है और उनकी मौत राष्ट्रीय विपदसी मानी जाती है"।

आगरकरजीका एक विद्यार्थी लिखता है—

"परलोकवासी प्रिन्सिपालसाहबने अज्ञान देशबांधवोंके लिये अपने कुटुंबियोंकी, स्नेहांकितोंकी, ज्ञातिबांधवोंकी और कभी कभी उन्ही देशबांधवोंकी भी अप्रियता खुशीसे, निश्चयसे सह ली, पर उन्हें कर्तव्य छोड नही दिया। शत्रुओंकोभी जिनसे लज्जा आवे, ऐसी गालियाँ अपने मित्रोंने सामूहिक जीवनीके रास्तेपर आपको दीं, तो भी आप नहीं डरे; पतित आदमियोंको भी जो प्रायश्चित्त न दिया जाय, उसके भागी आपको अपने मूरख विद्यार्थियोंने और हठी विरोधियोंने किया तो भी आपने उनका हित कभी दुर्लक्षित नहीं किया, जिस स्वार्थी बुद्धीसे आप आमरण अलिप्त रहे, उसका आरोप करनेमें कोई शर्त न माननेवालोंको भी आपने मित्र माना, कंगालीके कष्टोंसे विद्यार्जन करके अपनी नौजवानीका ढंग गरीबसा रखनेमें जिन्होंने गर्व रक्खा और हजारों रुपयोंकी प्राप्तीकी आकर्षक आशा जिन्होंने ठुकरा दी, उनका त्याग कितना बडा होगा? जिनकी विचारधारामें थोडासा फरक होता तो लोग जिन्हें प्यारसे देखते। लेकिन आपने विवेककी आज्ञासे कर्तव्य निश्चित किया और लेख लिखे, और कुछ समयतक तो

समाजकी नाराजीका बलि होकर अपने सुखका यज्ञ किया, तब उनकी लोकहितकी शिक्षा कितनी ज्वलंत होगी "।

१९१६ में जब आगरकरजीकी २१ वी पुण्यतिथि आगरकरजीके बाद सामूहिक रीतसे यानी गयी उस समय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकजीने आगरकरजीकी थोरवी इस तरह सुनाई है।

"देशी आखबारोंको आजकल जो कुछ महति मिली है उसका बहुतसा अंश बेशक आगरकरजीकी विद्वत्ताका और मार्मिकता का फल है। सन १८८९ तक केसरीमें राजनैतिक विषमोंपर प्रसिध्द हुअे लेखोंमें से बहुतेरे आगरकरजीके है और उनका सूक्ष्म समीक्षण देखा जाय तो आगरकरजी पूरे स्वातंत्र्यवादी थे। जो तर्कशुध्द विचारधारा सामाजिक विषयोंमे उन्होंने लगा दी थी वही राजकीय बातोंमें। अपनी कर्तबगारीसे व्यावहारिक उन्नति आसानीसे हो सकनेका मौका देखकर भी अपने मनोदेवताकी आशासे संकट, विपद, और कष्ट उठाते उठाते देशसेवाका अपना इरादा पूरा करनेका निर्धार रखनेवाले आगरकरजीके जैसे लोग सच्चे धीरवीर होते है।"